गृहस्थ भारतीय समाजका आधारस्तम्भ है

भारतीय सभ्यतामें इस सृष्टिके मौलिक ऐक्य एवं इसमें सर्वव्याप्त ब्रह्मका दर्शन तो हुआ ही है, इस दर्शनके अनुरूप जीवनयापन करनेके लिये सम्यक् सामाजिक व्यवस्थाका विधान भी यहाँ कर दिया गया है। भारतीय समाज व्यवस्था भी वैसी ही विशिष्ट भारतीयता लिये हुए है जैसी सृष्टिसम्बन्धी भारतीय दर्शनमें परिलक्षित होती है।

भारतीय सभ्यतामें सृष्टिके समस्त भावोंका भरणपोषण करनेका उत्तरदायित्व प्रमुखतः धर्मनिष्ठ, अनुशासित एवं समर्थ गृहस्थोंका है। महाभारतमें भगवान् शंकर उमाजीसे कहते हैं कि सृष्टिके सैंकड़ों-सहस्रों चराचर गृहस्थके ही आश्रयमें हैं, वे सब-के-सब गृहस्थके धर्मसम्मत कर्मोंसे अर्जित भोगोंका ही उपभोग करते हैं। राजा, अमात्य, सैनिक एवं विद्वान्-विचारक आदि सब और दूर-दूरसे चलकर आ रहे पाथेयरहित पथिक भी भरण-पोषणके लिये गृहस्थपर ही निर्भर हैं।

भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक व्यवस्थाकी मूल इकाई गृहस्थ है। और गृहस्थ इस महान् दायित्वका निर्वाह अकेले नहीं अपने समस्त कुटुम्बको साथ लेकर ही करता है।

भारतीय गृहके केन्द्रमें स्त्री प्रतिष्ठित है

गृहस्थके सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक उत्तरदायित्वोंका निर्वाह कुटुम्बके सब सदस्य संयुक्त रूपसे करते हैं। परन्तु भारतीय सभ्यतामें स्त्री गृह एवं कुटुम्बके केन्द्रपर स्थित है। महाभारतमें कहा गया है कि गृहिणी ही गृह है। वेदमें कहा गया है कि स्त्री गृहकी साम्राज्ञी है। मनुका विधान है कि गृहका प्रारम्भ विवाहसे होता है और स्वयं भोजन करनेसे पूर्व सृष्टिके सब भावोंके लिये सम्यक् भागांश निकालनेके गृहस्थके प्राथमिक कर्त्तव्यका पालन पुरुष और पत्नीको मिलकर ही करना होता है। पञ्चमहायज्ञके नित्यकर्मका सम्पादन दम्पति मिलकर ही करते हैं।

महाभारतके वनपर्वमें द्रौपदी इन्द्रप्रस्थके राजगृहमें अपनी दिनचर्याका वर्णन करते हुए भारतीय गृहमें स्त्रीकी केन्द्रीय भूमिका एवं उत्तरदायित्वका विशद चित्र प्रस्तुत करती हैं। गृहमें स्त्रीका यह उच्च स्थान दीर्घकालतक प्रतिष्ठित रहा है। उन्नीसवीं ईसवी शताब्दीके तञ्जावूर राज्यके एक अभिलेखमें वहाँके राजगृहकी राज्ञियों द्वारा अनेक लोगोंके भोजनकी व्यवस्था करनेका वर्णन हुआ है। इस वर्णनमें तञ्जावूरकी राज्ञियाँ महाभारतकी द्रौपदी जैसी ही भूमिका एवं उत्तरदायित्वका निर्वाह करती दिखती हैं। आज भी भारतकी स्त्रियाँ अपने कुटुम्बके सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक हितका सम्पादन करनेके प्राथमिक उत्तरदायित्वका समुचित निर्वाह प्रयासपूर्वक कर रही हैं।

द्रौपदी-सत्यभामा संवाद

महाभारतके वनपर्वमें द्रौपदी सत्यभामासे इन्द्रप्रस्थके राजगृहमें अपनी भूमिका एवं दिनचर्याका वर्णन इस प्रकार करती हैं –

मैं नित्य भिक्षा, बलि एवं श्राद्धका सम्पादन करती हूँ। मैं ही विभिन्न पर्वोंके समय स्थालीपाक यज्ञ सम्पन्न करती हूँ। मैं ही माननीय जनोंका सम्मान-सत्कार करती हूँ। कुटुम्बमें प्रचलित जिन धर्मोंको मैंने पूर्वमें अपनी साससे सुन रखा है और अन्य भी जिन धर्मोंको मैं स्वयं जानती हूँ, उन सबका मैं आलस्य त्यागकर दिन-रात पालन करती हूँ।

कुन्तीके बुद्धिमान् पुत्र युधिष्ठिरकी शतसहस्र दासियाँ हाथोंमें भोजनके पात्र लिये दिन-रात अतिथियोंको खिलानेमें तत्पर रहती थीं। जब इन्द्रप्रस्थवासी राजा युधिष्ठिर प्रवासपर निकलते थे तो शतसहस्र हाथी और शतसहस्र अश्व उनका अनुसरण करते थे। उन दिनों जब युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थमें रहकर पृथिवीका परिपालन करते थे, तब ऐसा उनका वैभव हुआ करता था। तब मैं ही उन असंख्यात दासियों, अश्वों एवं हाथियों आदिकी गणना करती थी। मैं ही उनके लिये आवश्यक वस्तुओंका प्रबन्ध करती थी और मैं ही उनकी समस्याएँ सुनती थी।

अन्तःपुरके समस्त वासियों, पाण्डवगृहके सब भृत्यों और गोपालों एवं गडरियोंसे लेकर समस्त कर्मकारोंके समग्र कृत-अकृतकी जानकारी मुझे ही रहती थी।

यशस्विनि सत्यभामे, कल्याणि, राजा युधिष्ठिर समेत सब पाण्डवबन्धुओंके समस्त आय-व्ययकी जानकारी अकेले मुझे ही थी। वरानने, भरतवंशके ऋषभ पाण्डवोंने गृहस्थका समस्त दायित्व अकेले मुझपर ही छोड़ रखा था। इस प्रकार वे बोझमुक्त हो उपासनामें रत रहते थे और अपनी उपासनाके अनुरूप कर्मोंका निर्वाह किया करते थे।

भारतीय राज्यका आधार ग्राम एवं समुदायमें है

भारतके गृहस्थ ग्राम, वंश, जाति एवं सम्प्रदाय जैसे विभिन्न सामाजिक समूहोंमें व्यवस्थित हैं। भारतीय दृष्टिमें समाजके ये सब सहज, स्वयंभूत एवं अवयवी संघटक सार्वजनिक नीतिके विधिसम्मत सहभागी हैं। इन संघटकोंकी अपने-अपने अधिकार-क्षेत्रकी गतिविधियों और इनके मध्य पारस्परिक सामञ्जस्यसे ही सार्वजनिक नीतिकी रचना होती है। वस्तुतः समाजके सहज संघटकोंकी गतिविधियाँ और उनका पारस्परिक सामञ्जस्य ही भारतकी सार्वजनिक नीति है।

सार्वजनिक नीति एवं व्यवस्थाके क्षेत्रमें किसी आधुनिक राज्यसे जिन-जिन कार्योंकी अपेक्षा की जाती है वे सब कार्य भारतमें समाजके इन सहज संघटकोंके माध्यमसे ही हुआ करते थे। आधुनिक राज्यके दो सबसे बड़े कार्य हैं – सार्वजनिक शान्ति व्यवस्था बनाये रखना और साधनहीनों, वृद्धजनों और अन्य असहायोंके लिये सामाजिक सुरक्षाका प्रबन्ध करना। इन दो कार्योंपर राज्यकी शक्ति एवं साधनोंके बड़े भागका नियोजन करना पड़ता है। समृद्ध देशोंके आधुनिक राज्यतन्त्र अपने सकल राष्ट्रीय उत्पादनका प्रायः एक-तिहाई भाग इन कार्योंपर व्यय करते हैं। भारतमें आज भी इन दोनों कार्योंका सम्पादन मुख्यतः कुटुम्ब, ग्राम, जाति एवं सम्प्रदाय जैसे संघटक ही करते हैं। इसीलिये भारतमें प्रतिव्यक्ति पुलिसबल विश्वमें प्रायः न्यूनतम है, तथापि हिंसक अपराधोंकी घटनाएँ भी प्रायः न्यूनतम ही हैं। कुटुम्ब, ग्राम, जाति एवं सम्प्रदाय जैसे संघटक वृद्धजनों, रोगियों एवं असहाय दरिद्रोंकी सेवा-शुश्रूषाका कार्य भी निभाते चले आ रहे हैं। आजके भारतीय राज्यकी इन कार्योंमें गति अल्प ही है।

शेष अगले पृष्ठपर...

भारतीय राज्यका आधार ग्राम एवं समुदायमें है

देश (२०००)	प्रति १००,००० व्यक्तियोंपर हिंसक अपराध
संयुक्तराज्य अमरीका	४३९.२
ब्रिटेन	४०८.०
जर्मनी	१३७.९
फ्रांस	१५२.१
रूस	५०.९
जापान	१६.५
इंडोनेशिया	५.९
चीन	५.४
भारत	४.६

दीर्घकालकी राजनैतिक दासताने भारतीय समाजके इन सहज संघटकोंकी गरिमा एवं साधनोंको क्षीण किया है। अतः आज कुटुम्बों, ग्रामों, जातियों एवं सम्प्रदायोंका ऐसा सामर्थ्य नहीं है कि वे अपने सब कार्योंको वैसी उदारता एवं सम्पूर्णतासे सम्पन्न करें जैसी अपेक्षा सुचारू भारतीय नीतिव्यवस्थामें उनसे रही है। परन्तु सामान्य भारतीयोंको जैसी-कैसी भी सामाजिक सुरक्षा आज उपलब्ध है वह समाजके इन्हीं सहज संघटकोंसे प्राप्त होती है। आगे हम देखेंगे कि यही संघटक आज विभिन्न क्षेत्रोंमें भारतीयों के सहज उद्यमके पुनःप्रस्फुटनका आधार बन गये हैं।

शीर्षपर प्रतिष्ठित राजा धर्मका संरक्षक है

भारतीय समाज कुटुम्ब, ग्राम, जाति एवं सम्प्रदाय जैसे अपने सहज संघटकोंके माध्यमसे स्वशासित है। इस स्वयंभू एवं स्वतन्त्र सार्वजनिक नीतिके शीर्षपर स्थित राजाके दो ही मुख्य कर्त्तव्य हैं। पहला, यह सुनिश्चित करना कि समाजके सब सहज संघटक एवं संस्थान पारस्परिक सामञ्जस्य बनाये रखते हुए अपने-अपने अधिकारक्षेत्रोंमें अपने-अपने कार्योंका समुचित सम्पादन करनेमें सक्षम बने रहें। और दूसरा, बाह्य आक्रमणसे समाजकी रक्षा करना। राजा बाहरके लोगोंको समाजका बलशाली विभीषण रूप दिखाता है। अपने समाजकी ओर अभिमुख होते ही वह सौम्य हितचिन्तकका रूप धारण कर लेता है।

समाजके सन्दर्भमें भारतीय राजाको विधिनियमनका कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। उसका कर्त्तव्य धर्मका विधान करना नहीं अपितु समाजके संघटकोंके सहज अनुशासनकी, उनके पूर्वप्रतिष्ठित देशधर्म, जातिधर्म एवं कुलधर्म आदिकी रक्षा करना है। भारतीय सभ्यतामें राजासे धर्म एवं प्रजाके संरक्षणके अतिरिक्त लोकरञ्जनकी भी अपेक्षा की गई है। अपनी समस्त प्रजाको प्रसन्न रखना, उनका रञ्जन करना, किसी भारतीय राजाके लिये अनिवार्य ही है। राजा शब्दकी व्युत्पत्ति राजत्वके रञ्जक पक्षसे ही है। भारत आनेवाले प्रारम्भिक ब्रिटिश पर्यवेक्षकोंके अनुसार भारतीय राजा लोक-रञ्जनके अपने कर्त्तव्यको इतनी गम्भीरतासे लेते थे कि वे प्रायः अपनी प्रजासे भयभीत-से दिखाई देते थे।

बाह्य आक्रमणसे संरक्षण एवं समाजके सहज संघटकोंमें निहित धर्मोंके सम्यक् पालनकी व्यवस्था करनेके साथ-साथ भारतीय राजाको साधनसम्पन्न समर्थ गृहस्थकी भूमिकाका निर्वाह भी करना होता था। इस भूमिकामें समस्त प्रजा एवं अपने राज्यके समस्त चराचरके सम्यक् भरणपोषणका उत्तरदायित्व राजा अपनेपर लेता था। महाभारतमें युधिष्ठिरको राजधर्मका उपदेश देते हुए भीष्म पितामह कहते हैं कि जिनका भरण करनेवाला अन्य कोई न हो उन सबका भरण वह करे, और अपनेपर सीधे निर्भर अपने भृत्योंके सुख-दुःख का अन्वीक्षण करते रहनेका उत्तरदायित्व तो उसका है ही। *अभृतानां भवेद् भर्ता भृत्यानामन्ववेक्षकः*। भारतीय राजा अपने राज्योंमें संविभाजन एवं आतिथ्यके संस्थानोंकी स्थापना एवं व्यवस्था सर्वदा करते आये हैं। भारतीय इतिहासके हर्षवर्धन जैसे अत्यन्त सम्मानित राजा तो नियमित अन्तरालपर अपनी समस्त सम्पदाका समाजमें संविभाजन कर अपने पूरे कोषको रिक्त ही कर देते थे।